पूर्व मध्यकालीन भारतीय न्याय एवं दण्ड व्यवस्था

(प्राकृत कथा साहित्य के सन्दर्भ में)

झिनकू यादव

प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति की संरचना में अभिलेख, मुद्रा, विदेशी यात्रियों के विवरण एवं खुदाई से प्राप्त सामग्रियों के साथ-साथ साहित्यिक स्रोतों का भी अत्यधिक महत्त्व है। प्राचीन भारत में इतिहास लेखन की सुव्यवस्थित परम्परा का अभाव था। ऐसी स्थिति में पुरातत्त्व एवं साहित्य ही भारतीय इतिहास एवं संस्कृति की जानकारी के साधन हैं। साहित्यिक स्रोतों में ब्राह्मण, बौद्ध एवं जैनधर्म के आचार्यों ने जिन कथानक एवं घटनाओं का वर्णन किया है, वे निरर्थक नहीं हैं। वे प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से इतिहास एवं संस्कृति की थाती के रूप में संजोई गई सामग्रियाँ हैं। ब्राह्मण एवं बौद्ध साहित्य की भाँति जैन साहित्य भी बृहद् रूप में लिखा गया। प्रारम्भिक जैन साहित्य तो जैन धर्म में आचार-नियम, संयम-साधना एवं दर्शन आदि का संकलित रूप है, जो आगम साहित्य के रूप में जाना जाता है। जैन आगमों को आधार मानकर डॉ० जगदीश चन्द्र जैन ने 'जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज' नामक ग्रन्थ की रचना की, जो जैन स्रोतों से प्राचीन भारतीय समाज के विभिन्न पक्षों की जानकारी का महत्त्वपूर्ण साधन है। आगमों की रचना के बाद उन पर निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य एवं टीकाएँ लिखी गईं। तत्पश्चात् कथा साहित्य एवं पुराणों की रचनाएँ की गईं। जैन कथा साहित्य की रचना लगभग छठी-सातवीं शताब्दी से लेकर १२वीं-१३वीं शताब्दी के बीच में की गई है। प्रस्तुत निबन्ध समराइच्चकहा, कुवलयमालाकहा, कथाकोषप्रकरण, ज्ञानपंचमीकहा एवं कुमारपाल प्रतिबोध से ली गई सामग्रियों पर आधारित है।

न्याय-व्यवस्था

पूर्व मध्यकालीन प्राकृत कथा साहित्य के उल्लेख से स्पष्ट होता है कि न्यायपालिका का प्रमुख अधिकारी राजा स्वयं होता था। आरम्भ में अपराधों की जाँच मन्त्रिगण अथवा अन्य अधिकारी करते थे और तत्पश्चात् मुकदमे राजा को सौंप दिये जाते थे।[1] राजा भी न्याय-पालिका के अधिकारियों की सलाह से निर्णय देता था।[2] कभी-कभी नगर के प्रमुख व्यक्ति मिलकर किसी वाद-विवाद सम्बन्धी मामलों पर निर्णय देते थे और निर्णय उभय पक्ष को मान्य होता था।[3] राजाज्ञा के विरुद्ध आचरण करने वालों को कठोर दण्ड दिया जाता था।[4] अपराध करने वाली

---

१. समराइच्चकहा 4, 259; देखिए—मनुस्मृति, 8।4-7 ।

२. वही 6, 561 ।

३. वही 6, 498 ।

४. वही 7, 642 ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्त्रियों को तथा राजद्रोही पुत्र को देशनिर्वासन तक की सजा दी जाती थी।[1] तत्कालीन धार्मिक परम्परा के अनुसार स्त्रियाँ अवध्य मानी जाती थीं, अतः उन्हें मृत्युदण्ड के स्थान पर देश-निर्वासन की सजा दी जाती थी।[2] राजा-महाराजा न्याय-प्रिय होते थे। न्याय में भेद-भाव नहीं किया जाता था। राजा ही सर्वोच्च न्यायाधिकारी था तथा अपने सामने उपस्थित किये गये अभियोग या अधीनस्थ न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपील सुनता था।[3] कुमारपाल प्रतिबोध में सोमप्रभ सूरि ने लिखा है कि चालुक्य नरेश कुमारपाल दिन के चौथे प्रहर में राज-सभा में बैठता था, जिसमें राज्य से सम्बन्धित अन्य कार्यों के अतिरिक्त वह न्यायिक कार्य भी करता था।[4] वसुदेवहिण्डी[5] के उल्लेख से स्पष्ट होता है कि अपराधों की जाँच के लिए राजा के पास लिखित अपील भी दी जाती थी। राजा यथासम्भव स्वयं न्याय करता था, पर अधिक कार्य के कारण 'प्राड्विवाक' या प्रधान न्यायाधीश उसका कार्य संभालते थे।[6] राजद्रोह का अपराध गुरुतर था।[7] सप्त प्रकृति (राजा, अमात्य आदि) के प्रति शत्रुभाव रखना महान् अपराध था और उसके लिए जीवित अग्नि में जलाने का विधान था। मनु ने राजाज्ञा का उल्लंघन करने वालों को तथा चोरी करने वालों को उसी प्रकार का अपराधी माना है।[8] वादी तथा उसकी सूचना के आधार पर राजा अपराधी को दण्ड देता था।[9] समराइच्चकहा में स्त्री को अवध्य बताकर उसे निर्वासित करने का उल्लेख है, किन्तु याज्ञवल्क्य ने गर्भपातिकी एवं पुरुष को मारने वाली स्त्रियों को मृत्यु-दण्ड का भागी बताया है।[10] सम्भवतः प्राकृत कथा साहित्य में स्त्रियों के प्रति उदार दृष्टिकोण का कारण जैनों की अहिंसा नीति ही है, जिसके आधार पर उन्हें अवध्य बताकर देश-निर्वासन की सजा ही पर्याप्त मान ली गई; किन्तु धर्मशास्त्रीय विधि के अनुसार स्त्रियों को भी गुरुतर अपराधों के लिए पुरुषों के समान दण्ड का भागी बताया गया है। मौर्यकाल में भी उचित दण्ड व्यवस्था थी। ऐसी मान्यता थी कि दण्ड देने वाला राजा सदैव पूज्य होता है। क्योंकि विधिपूर्वक शास्त्रविहित दिया गया दण्ड प्रजा को धर्म, अर्थ एवं काम से युक्त करता है।[11]

दण्ड-व्यवस्था—चोरी

पूर्व मध्यकालीन भारतीय शासन पद्धति में साधारण से साधारण अपराध पर कठोर दण्ड की व्यवस्था थी। समराइच्चकहा में भी धर्मशास्त्रों के समान पुरुष-घातक तथा परद्रव्यापहारी को उसके जीते ही आँख, कान, नाक, हाथ तथा पाँव काटकर अंग छेद किये जाने का विधान बताया गया है।[12] मौर्यकाल में भी बलवान व्यक्ति निर्बलों को कष्ट न पहुँचाये, इसके लिए

---

१. समराइच्चकहा, 2, 115; 4, 286; 7, 643 ।
२. वही, 5, 362; 6, 560-61 । ३. अल्तेकर—प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृ० 150 ।
४. कुमारपाल प्रतिबोध, प्रस्तावना, पृ० 13—गायकवाड ओरियण्टल सीरीज 14, बड़ौदा 1920 ।
५. वसुदेवहिण्डी, पृ० 253, 'लिहियं से वयणं संभोइयो य' (भावनगर एडी०) ।
६. अल्तेकर— प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृ० 150 ।
७. वृहस्पति, 17।16 । ८. मनुस्मति, 9।275 ।
९. हरिहर नाथ त्रिपाठी—प्राचीन भारत में राज्य और न्यायपालिका, पृ० 215
१०. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2।268 । ११. अर्थशास्त्र, 1।4।13—यथार्हदण्डः पूज्यतेः —1।4।14 ।
१२. समराइच्चकहा, 2, 117; 4, 326-27 ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कठोर दण्ड-व्यवस्था थी।[1] फाह्यिान के अनुसार उत्तर भारत में मृत्यु-दण्ड नहीं था। चोल और हर्ष के शासन-काल में ऐसे दण्ड की कमी थी।[2] चोरी होने पर राजा द्वारा नगर भर में यह घोषणा करायी जाती थी कि यदि किसी के घर में चोरी का सामान मिलेगा तो उसे शारीरिक दण्ड दिया जायगा तथा उसका सारा धन भी छीन लिया जायगा।[3] पूरे नगर में चोरों का पता लगाया जाता था और अपराध सिद्ध होने पर अभियुक्त को मृत्युदण्ड दिया जाता था। अपराधी के शरीर में तृण तथा कालिख पोत कर डिमडिम की आवाज के साथ यह घोषणा करते हुए नगर भर में घुमाया जाता था कि इस व्यक्ति को अपने कृत्यों के अनुसार दण्ड दिया जा रहा है। अतः यदि दूसरा व्यक्ति भी ऐसा अपराध करेगा तो उसे भी इसी प्रकार से कठोर दण्ड दिया जायगा और तत्पश्चात् उसे चाण्डाल द्वारा श्मशान भूमि पर ले जाकर मृत्यु-दण्ड दिया जाता था।[4] अभियुक्त को नगर भर में वाद्य के साथ घोषणा पूर्वक घुमाने का तात्पर्य लोगों को अपराध न करने के लिए भयभीत करना था, ताकि नगर अथवा राज्य में अपराधों की कमी हो तथा लोग राजाज्ञा का पालन करते हुए शान्ति एवं व्यवस्था बनाये रखें। समराइच्चकहा में अपराध सिद्ध होने पर अभियुक्तों के लिए आठ प्रकार के दण्ड देने का निर्देश है, यथा—खेद प्रकट करना, निषेध, धिक्कारना, डाँटना-फटकारना, संसीमन (किसी सीमा तक बाहर रहने का आदेश), कारावास, शारीरिक दण्ड और आर्थिक दण्ड देना।[5]

सेंध लगाकर चोरी करने वालों का अपराध सिद्ध होने पर राजाज्ञा द्वारा अपराधी को शूली पर लटका कर मृत्यु-दण्ड दिया जाता था।[6] छल-कपट तथा धूर्तता करनेवालों को भी मृत्यु-दण्ड दिया जाता था।[7] आचारांगचूर्णि से पता चलता है कि चोरी करने वाले को कोड़े लगवाये जाते थे अथवा विष्ठा भक्षण कराया जाता था।[8] आदिपुराणकार के अनुसार अपराध सिद्ध होने पर अभियुक्त को मृत्तिका-भक्षण, विष्ठा-भक्षण, मल्लों द्वारा मुक्के से पिटवाना तथा सर्वस्व हरण आदि दण्ड दिये जाते थे।[9]

वैदिक काल में भी चोरी को अपराध माना गया है।[10] गाय एवं वस्त्र आदि के चोरों को **'तायुस्'** कहा गया है।[11] चोरी के अपराधी को राजा के सामने उपस्थित किया जाता था तथा उन पर चोर के चिह्न लगाने का उल्लेख है।[12] स्मृतियों में चोरों का पता लगाने के विविध प्रकार बताये गये हैं, यथा—जो व्यक्ति अपने निवास स्थान का पता नहीं बताता, संदेहपूर्ण दृष्टि

---

१. अर्थशास्त्र, 1।4।13, 1।4।16—'अप्रणीतो हि मात्स्यन्यायमुद्भावयति।'

२. हरिहरनाथ त्रिपाठी—प्राचीन भारत में राज्य और न्यायपालिका, पृ० 246।

३. समराइच्चकहा, 2, 111।

४. वही 4, 259-60, 272; 5, 367;6, 523-24, 507-8; 9, 957।

५. वही, 5, 358। ६. वही 3, 184, 210; 7, 669, 716।

७. वही, 6, 560-61।

८. आचारांग चूर्णि 2, पृ० 65; देखिए-पतंजलि महाभाष्य 5-1-64, 65, 66।

९. आदिपुराण 46।292-93। १०. ऋग्वेद् 4।38।5; 5।15।5।

११. वही, 10।4।6; 4।38।5; 6।12।5।

१२. वही, 1।24।14-15; 7।86।5; 5।79।9; 1।24।12-13।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से देखता हो, अनुचित स्थान पर रहता हो, पूर्व-कर्म से अपराधी हो, जाति आदि छिपाता हो, सुरा और सुन्दरी के सम्पर्क में रहता हो, स्वर बदल कर बात करता हो, अधिक खर्च करता हो, पर आय के स्रोत का पता न हो, खोई वस्तु या पुराना माल बेचने वाला हो, दूसरे के घर के पास वेष बदल कर रहता हो, उसे चोर समझना चाहिये।[१] स्मृतियों में चोरी करने वालों को कठोर दण्ड का भागी बताया गया है। बहुमूल्य रत्नों की चोरी के लिए मनु ने मृत्यु-दण्ड का विधान किया है।[२] सेंध लगाकर चोरी करने वालों को शूली की सजा दिये जाने का निर्देश है।[३] मनुस्मृति में एक अन्य स्थान पर राजकोष एवं मन्दिर की वस्तु, अश्व, रथ, गज आदि की चोरी करने वालों को मृत्यु का भागी बताया गया है।[४] स्मृतियों में चोर के कार्य में सहायता करने वाले को भी चोर के समान दण्ड दिये जाने का उल्लेख है।[५]

पुलिस-विभाग—दण्डपाशिक

समराइच्चकहा, कुवलयमालाकहा और कुमारपाल प्रतिबोध आदि ग्रन्थों में पुलिस विभाग के एक प्रमुख अधिकारी को दण्डपाशिक कहा गया है।[६] उसकी नियुक्ति राजा के द्वारा की जाती थी। वह अपराध का सतर्कता पूर्वक निरीक्षण करने के बाद समुचित दण्ड देता था।[७] वह अपराधियों का पता लगाता था और अपराध सिद्ध होने पर दण्ड की आज्ञा देता था। मुकदमें दण्डपाशिक के बाद मन्त्रिमण्डल में लाये जाते थे और तत्पश्चात् राजा उस पर अन्तिम निर्णय देता था।[८] दण्डपाशिक (चोरों को पकड़ने का फन्दा धारण करने वाले) का उल्लेख पाल, परमार तथा प्रतिहार के अभिलेखों में प्राप्त होता है।[९] उत्तर भारत में पूर्व मध्यकालीन राजाओं के केन्द्रीय प्रशासन में दण्डपाशिक, महाप्रतिहार, दण्डनायक एवं बलाधिकृत जैसे प्रमुख अधिकारी होते थे। ये अपने-अपने विभाग के प्रमुख अथवा अध्यक्ष होते थे।[१०] दण्डपाशिक पुलिस विभाग का एक अधिकारी था, जो विभिन्न भागों में नियुक्त रहते थे तथा अपराधियों को दण्ड देने का कार्य करते थे। दण्डपाशिक दण्डभोगिक के समान था, जिसे पुलिस मजिस्ट्रेट कहा जा सकता है।[११]

---

१. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2।226-68; नारद परिशिष्ट, 9।12।

२. मनुस्मृति, 8।323। ३. वही, 9।276।

४. वही, 9।80। ५. वही, 9।271; याज्ञ०, 2।286।

६. समराइच्चकहा, 4, 358-59-60; 6, 508-520-523; 7, 714, 715-716, 718; 8, 847-48; 9, 957; देखिए—इंडि० हिस्टा० क्वार्ट०, दिसम्बर 1960, पृ० 266।

७. समराइच्चकहा, 6, 597-98-99; देखिए—डी सी० सरकार—इंडियन इपिग्रैफिकल ग्लासरीज, पृ० 81।

८. समराइच्चकहा, 8, 849-50।

९. हिस्ट्री आफ बंगाल, भाग 1, पृ० 285; इपिग्रेफिया इंडिका, 19, पृ० 73; 9, पृ० 6, देखिए—सिन्धी जैन ग्रन्थमाला, 1, पृ० 77; डी० सी० सरकार—इण्डियन इपिग्रेफी—पृ० 76।

१०. इपिग्रेफिया इण्डिका, 13, पृ० 339।

११. दी एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० 240।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समराइच्चकहा में कालदण्डपाशिक[1] का भी उल्लेख आया है। सम्भवतः यह दण्डपाशिक से उच्च अधिकारी होता था, जो गंभीर मुकदमों की निगरानी कर अभियुक्त को मृत्यु-दण्ड देता था।

अर्थशास्त्र[2] तथा कामसूत्र[3] में नगर के प्रमुख अधिकारी को नागरक कहा गया है। कुछ समालोचकों ने नागरक की व्याख्या दण्डपाशिक के समान की है।[4] समराइच्चकहा में उल्लिखित दण्डपाशिक और कालदण्डपाशिक तथा अन्य उपर्युक्त साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि दण्डपाशिक पुलिस विभाग का प्रमुख अधिकारी था, जो चोर-डाकुओं का पता लगाकर उनको दण्डित भी करता था। वह न्यायिक जाँच के पश्चात् दण्ड देने का भी कार्य करता था।

पुलिस विभाग का दूसरा कर्मचारी प्राहरिक[5] कहलाता था, जो नगरों तथा गाँवों को चोर-डाकुओं से सुरक्षित रखने में सहायता करता था। ये प्रहरी (पहरा देने वाले) पुलिस कर्मचारी होते थे। कुवलयमाला[6] में जामइल्ल (यामइल) शब्द का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार इसी ग्रंथ में पुरमहल्ल[7] और नगरमहल्ल[8] शब्द का भी प्रयोग हुआ है। यहाँ जामइल्ल शब्द का अर्थ प्राहरिक या पहरेदार बताया गया है।[9] कादम्बरी में भी प्राहरिक[10] यामिक[11] और यामिक लोक[12] (पहरे के सिपाही) का उल्लेख है। यहाँ ये अधिकारी याम अर्थात् रात्रि के समय नगर आदि में सुरक्षा की दृष्टि से पहरा देने वाले यामिक और यामिकलोक कहे गये हैं।

समराइच्चकहा में अन्य पुलिस कर्मचारी यथा नगररक्षक[13] तथा आरक्षक[14] आदि का भी उल्लेख है। प्रो० दशरथ शर्मा के अनुसार राज्य की ओर से गाँवों को सुरक्षा एवं शान्ति व्यवस्था के लिए रक्षकार नियुक्त किये जाते थे।[15] किन्तु समराइच्चकहा में केवल नगररक्षक का ही उल्लेख है, सम्भवतः नगर की रक्षा के लिए पुलिस अथवा सैनिकों का एक जत्था नियुक्त रहता था। आरक्षक का तात्पर्य सुरक्षा सैनिक से है, जो नगरों और गाँवों में शान्ति एवं सुरक्षा बनाए रखने में सहायता करते थे। आरक्षकों को आधुनिक पी० ए० सी० की श्रेणी में रखा जा सकता है, जो केवल आन्तरिक सुरक्षा के ही काम आते थे।

---

१. समराइच्चकहा, 3, 212; 4, 321 ।
२. अर्थशास्त्र, 2, 36 11 । ३. कामसूत्र, पंक्ति 5-9 ।
४. डी० सी० सरकार—इंडियन इपिग्रेफी ग्लासरी, पृ० 269 ।
५. समराइच्चकहा, 8, 825 । ६. कुवलयमालाकहा, 84।24; 135।18 ।
७. वही, 183।4 । ८. वही, 127।31; 247।3-4 ।
९. देखिए—पाइअसद्दमहण्णवो, पृ० 354 ।
१०. अग्रवाल—कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० 267, 270 ।
११. वही, पृ० 94, 111, 217-232 । १२. वही, 268, 270 ।
१३. समराइच्चकहा, 4, 270 (तओ आउलीहूय नायरया नयरारविषया); 5, 387 ।
१४. वही, 2, 155-56; 4, 326; 5, 457; 6-509, 519, 522, 597 ।
१५. दशरथ शर्मा—अर्ली चौहान डायनेस्टीज, पृ० 207 ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्राम तथा नगर शासन 'पंचकुल'

समराइच्चकहा में 'पंचकुल'[1] का उल्लेख हुआ है। यह पाँच न्यायिक अधिकारियों की एक समिति होती थी। समराइच्चकहा में उल्लिखित पंचकुल आधुनिक ग्राम पंचायत की भाँति पाँच अधिकारियों की एक न्यायिक समिति होती थी। इनका निर्वाचन धन और कुल के आधार पर होता था।[2] अतः स्पष्ट होता है कि पंचकुल के ये सदस्य धनी, सम्पन्न एवं कुलीन होते थे। कौटिल्य के अनुसार राजा को चाहिए कि प्रत्येक अधिकरण (विभाग) में बहुत से मुख्यों (प्रमुख अधिकारी) की नियुक्ति करे, जो न्यायिक जाँच करें तथा उन्हें स्थायी नहीं रहने दिया जाय।[3] स्पष्टतः मौर्य काल में भी इसका संकेत प्राप्त होता है। मेगस्थनीज ने नगर तथा सैनिक-प्रबन्ध के लिए पाँच सदस्यों की समिति का उल्लेख किया है।[4] गुप्तकाल में भी पाँच सदस्यों की ग्राम समिति को पंचमंडली कहा जाता था। इससे पता चलता है कि पाँच व्यक्तियों का यह बोर्ड बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है।

गुजरात में विशाल देव पोरबन्दर-अभिलेख से पता चलता है कि पंचकुल को सौराष्ट्र का प्रशासन नियुक्त किया गया था।[5] आठवीं शताब्दी के अन्त में हुंड (प्राचीन उद्मण्डपुर) के सारदा अभिलेख में पंचकुल का उल्लेख है।[6] गुजरात में प्रतिहार नरेश के सियादोनो अभिलेख में पंचकुल का पाँच बार उल्लेख आया है।[7] विक्रम संवत् १३०६ के चाहमान अभिलेख[8] तथा विक्रम संवत् १३३६ के भीमनाल अभिलेख[9] में पंचकुल का उल्लेख हुआ है और दोनों अभिलेखों से पता चलता है कि पंचकुल राजा द्वारा नियुक्त किये जाते थे। १३४५ ई० के चाहमान अभिलेख[10] में भी पंचकुल का उल्लेख है। एक अन्य स्थान पर तो ग्राम पंचकुल[11] शब्द का उल्लेख आया है। इसी प्रकार एक अभिलेख में पंचकुल को महामात्य के साथ उद्धृत किया गया है।[12] सौराष्ट्र के शक संवत् ८३९ के एक अभिलेख में पंचकुलिक का उल्लेख है, जो सम्भवतः पंचकुल के पाँच सदस्यों की समिति में से एक था।[13] इसी प्रकार संग्रामगुप्त के एक अभिलेख में महापंचकुलिक[14] का उल्लेख है, जो एक उच्च अधिकारी जान पड़ता है। इसी प्रकार गुप्त सम्राटों के दामोदर प्लेट में प्रथम कुलिक का

---

१. समराइच्चकहा, 4, 270-71; 6, 560-61।

२. निशीथचूर्णि, 2, पृ० 101। ३. अर्थशास्त्र, 2।9।

४. मैक्क्रिंडिल—मैगस्थनीज फ्रैगमेंट, 31, पृ० 86-88।

५. अल्तेकर—प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृ० 177।

६. इपिग्राफिया इंडिका, 22, पृ० 97।

७. वही, 1, पृ० 173। ८. वही, 11, पृ० 57।

९. बाम्बे गजेटियर, 1, 480, नं० 12। १०. इपिग्राफिया इंडिका, 11, पृ० 58।

११. वही 11, पृ० 50।

१२. नाहर—जैन इंस्क्रिप्सन्स 248—महामात्य प्रभृति पंचकुला।

१३. इंडियन एँटीक्यूरी, 12, पृ० 193-94।

१४. जर्नल आफ दी बिहार एण्ड उड़िसा रिसर्च सोसायटी, 588।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उल्लेख है।[१] यहाँ मजूमदार ने भी पंचकुल के पाँच सदस्यों का एक बोर्ड माना है, जिनमें से प्रत्येक को पंचकुलिक और उनके मुख्य अधिकारी को महापंचकुलिक बताया है।[२]

समराइच्चकहा में पंचकुल को राजा के साथ बैठकर मुकदमों की निगरानी तथा उनके (पंचकुल) परामर्श से राजा द्वारा उचित निर्णय देने का उल्लेख है।[३] हर्षचरित से भी पता चलता है कि प्रत्येक गांव में पंचकुल संज्ञक पाँच अधिकारी गाँव के करण या कार्यालय के व्यवहार (न्याय और राजकाज) चलाते थे।[४] प्रबन्धचिन्तामणि तथा अन्य कथाओं में भी पंचकुल का उल्लेख है।[५]

ऊपर के आभिलेखीय तथा साहित्यिक साक्ष्यों से पता चलता है कि पंचकुल का निर्वाचन राजा द्वारा किया जाता था, जो गाँव तथा नगर के मुकदमों की न्यायिक जाँच कर राजा, अमात्य तथा अन्य अधिकारियों के परामर्श से निर्णय भी देते थे। राजपूताना में १२७७ ई० के भीमनाल अभिलेख में पंचकुल के सदस्यों द्वारा एक दान देने का वर्णन है[६]। अभिलेखों के आधार पर यह प्रकट होता है कि पंचकुल मंत्री और गवर्नरों से सम्बन्धित थे तथा कभी-कभी नगर के अधीक्षक का भी कार्य करते थे, किन्तु अन्य विद्वानों के अनुसार उनके (पंचकुल) कार्य किसी निश्चित सीमा (नगर-गाँव अथवा मन्त्री) तक सीमित न थे।[७]

कारणिक

पंचकुल की भाँति समराइच्चकहा में अपराधों की न्यायिक जाँच करते हुए कारणिक[८] का उल्लेख किया गया है। अन्य प्राचीन जैन ग्रंथों में न्यायाधीश के लिए कारणिक अथवा रूप-यक्ष (पालि में रूप-दक्ष) शब्द का प्रयोग हुआ है।[९] रूप-यक्ष को माठर के नीतिशास्त्र और कौडिन्य की दण्डनीति में कुशल होना बताया गया है तथा उसे निर्णय देते समय निष्पक्ष रहने का निर्देश दिया गया है।[१०] उत्तराध्ययन टीका में[११] उल्लिखित है कि करकण्डु और किसी ब्राह्मण में एक बाँस के डण्डे को लेकर झगड़ा हो गया। दोनों कारणिक के पास गये। बाँस करकण्डु के श्मशान में उगा था, इसलिए उसे दे दिया गया। बृहत्कल्पभाष्य[१२] में भी उल्लिखित है कि अपराधी को राजकुल के कारणिकों के पास ले जाया जाता था और अपराध सिद्ध होने पर घोषणापूर्वक दण्डित किया जाता था। सोमदेव ने कर्णी (कार्णिक) के पाँच प्रकार के कार्य एवं अधिकार गिनाये हैं, यथा—

१. इपिग्राफिया इंडिका 15, 113-145। २. ए० के० मजूमदार—चालुक्याज आफ गुजरात, पृ. २३९।
३. समराइच्चकहा, 6, 560-61।
४. वासुदेवशरण अग्रवाल—हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० 203।
५. सिन्धीजैनग्रन्थमाला, 1, पृ० 12, 57, 82।
६. अल्तेकर—प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृ० 178।
७. ए० के० मजूमदार—चालुक्याज आफ गुजरात, पृ० 240।
८. समराइच्चकहा 4, 271—'नीया पंचउल समीयं, पुच्छिया पंचउलिएहि कओ तुब्भेत्ति। तेहि भणियं—'सावत्थीओ'। कारणिएहिं भणियं कहि गमित्सह त्ति। तेहि भणियं सुसम्म नयरं। कारणिएहिं भणियं किंनिमित्त त्ति—कारणिएहि भणियं-आथे तुम्हाणं किंचिदविणाजायं.....'।
९. जगदीशचन्द्र जैन-जैनागम साहित्य में भारतीय समाज, पृ० 64।
१०. व्यवहार भाष्य, 1, भाग 3, पृ० 132। ११. उत्तराध्ययन टीका, 9, पृ० 234।
१२. बृहत्कल्पभाष्य, 1।900, 904-5।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) अदायक (राज्य की आय को एकत्र करने वाला), (२) निबन्धक (लेखा-जोखा का कार्य करने वाला), (३) प्रतिबन्धक (सील का अध्यक्ष), (४) नीति ग्राहक (वित्त विभाग का कार्य), (५) राज्याध्यक्ष (इन चारों का अध्यक्ष)[१] । कर्णाटक के कलचुरि शासन में पाँच अधिकारी नियुक्त किये जाते थे। इन्हें 'करणम' कहते थे। इनका कार्य यह देखना था कि सार्वजनिक धन का दुरुपयोग न हो, न्याय की व्यवस्था ठीक हो तथा राजद्रोहियों और उपद्रवियों को समुचित दण्ड मिले।[२]

प्राकृत जैन कथा ग्रन्थों में उल्लिखित कारणिक राज्य के आय-व्यय आदि का लेखा-जोखा तैयार करने के साथ-साथ न्यायिक जाँच का भी कार्य करता था, जैसाकि ऊपर के साक्ष्यों द्वारा पुष्ट होता है।

१. जी० सी० चौधरी—पोलिटिकल हिस्ट्री आफ नार्दर्न इंडिया फ्राम जैन सोर्सेज, पृ० 362 ।

२. इपिग्रैफिया कर्णाटिका, भाग, 7, शिकारपुर संवत् 102 और 123 ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org